

आध्यात्मिक जीवन का अभिन्न अंग उपासना

□ कमला जैन 'जीजी', एम. ए.

'जन्तूनां नरजन्म दुर्लभम् ।' प्राणियों को मानव-जन्म प्राप्त करना अति दुर्लभ है और यही जन्म चौरासी लक्ष योनियों में सर्वश्रेष्ठ है, यह बात सभी धर्म-ग्रन्थों में प्रकारान्तर से कही गई है। कारण यही है कि मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने ज्ञान एवं विवेक के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों में गतिमान् होकर अपनी चरम लक्ष्य-सिद्धि कर सकता है। चतुर्विध पुरुषार्थों में मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है और यही मनुष्य का परम लक्ष्य है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के हमारे शास्त्रों में अनेक साधन बताए गए हैं, जिनमें भक्ति एवं उपासना का उल्लेख करते हुए इन्हें आध्यात्मिक जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। सामान्यतया लोग अपने-अपने इष्टदेव की भक्ति और पूजा करके उपासना की सहज और सरल विधि अपनाते हैं, किन्तु संसार-मुक्ति ही जिन साधकों का एकमात्र लक्ष्य बन जाता है वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहनतर उपासना में निमग्न होकर अपनी मंजिल प्राप्त कर लेते हैं। उनका एकान्त विश्वास होता है—

लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं,
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम् ।
यस्त्वात्ममुक्तो न यतेत मूढधीः,
स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात् ॥

—सर्वश्रेष्ठ मनुष्यजन्म, विद्या, योग्यता आदि प्राप्त करके भी जो व्यक्ति आत्म-मुक्ति के लिये प्रयत्न नहीं करता, वह असद्ग्रह से आत्महत्या करता है। अतः मनुष्य को मुक्ति के लिये अवश्यमेव प्रयत्न करना चाहिये।

स्पष्ट है कि आत्म-मुक्ति के लिये साधक को उपासना करने में पुरुषार्थ करना अनिवार्य है, क्योंकि उपासना ही उसे मोक्ष-प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है। आवश्यकता है उत्कृष्ट संकल्प की। प्रत्येक मनुष्य संकल्पमय होता है, किन्तु उसे ध्यान रखना चाहिये कि अपकृष्ट संकल्प से वह अपकर्ष को प्राप्त होगा तथा उत्कृष्ट संकल्प से उत्कर्ष को प्राप्त हो सकेगा।

उपासना का स्वरूप

जिस क्रिया के द्वारा मानव स्वयं को अपने इष्ट के साथ प्रस्थापित कर सके, उसी का नाम 'उपासना' है। 'उप-समीपे आसना—स्थितिः उपासना। उपासक भावप्रवण मन से उपासना करे अथवा उपासना से मन में भाव प्रवणता हो, दोनों ही बातें सम्भव हैं। उत्तम गुरु या अधिकारी सिद्ध साधकों के हृदय में पूर्व से ही भावप्रवणता होती है। अतः उनकी

धम्मो दीतो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

उपासना सहज व सरल होने के कारण निर्बाध रूप से सरिता की प्रबल वेगवती धारा के समान निरन्तर अपने आराध्य अथवा इष्ट की ओर बहती रहती है। किन्तु इच्छुक भक्त या साधक के मन में भावप्रवणता प्रारम्भ में पूर्णतया विकसित नहीं होती। उसके हृदय से उपासना का रूप प्रज्वलित अग्नि के समान अन्तर के कषायों को भस्म कर सकने की क्षमता नहीं रखता। लेकिन सिद्ध-साधकों के संसर्ग से तथा अभ्यास से शनैः-शनैः उसके हृदय में भी भावप्रवणता प्रज्वलित पावक का रूप धारण कर सकती है। अतः किसी भी कोटि के साधक अथवा उपासक में हीनता या निराशा का भाव नहीं होना चाहिये। उसे पूर्ण आस्था, एकाग्रता एवं विश्वास-पूर्वक साधना-रत रहना चाहिये। 'अभ्यासः सर्वसाधनम्' अभ्यास से कुछ भी असंभव नहीं रहता, यही सर्वसिद्धियों की उपलब्धि में सहायक होता है।

उपासना की आवश्यकता

अनेक व्यक्तियों का विचार होता है कि हम उपासना किसलिए करें? निरर्थक परेशानी मोल लेकर उपासना में समय की भी बर्बादी करना कहाँ की बुद्धिमानी है? इसके अलावा उपासना का फल मिलेगा ही, यह भी कहाँ निश्चित है? ऐसे लोगों के विचार से उपासना की विविध क्रियाएँ करना बेकारों का कार्य है, एकमात्र आडम्बर और शून्य में हाथ-पैर मारने के समान है। इस संसार में प्राणियों को भूख मिटाने के लिए भोजन की, प्यास मिटाने को पानी की, श्रम की थकावट दूर करने के लिये सोने की और वंश-परम्परा चलाने के लिये पुत्र-कलत्र की आवश्यकता तथा इन सब भोगों के लिये मात्र धन की परम आवश्यकता है। इन सभी उपलब्धियों के लिये प्रयत्न करने पर फल मिलता दिखाई देता है, किन्तु उपासना की क्रियाएँ अन्धकार में तीर चलाने की तरह हैं, जिनका प्रथम तो निशाने पर लगना ही कठिन है और फिर प्रयत्न के अनुसार फल मिल जाएगा इसकी भी कहाँ गारंटी है? इसलिये उपासना जैसी निरर्थक अथवा अनिश्चित फलप्रदायिनी खटपट में पड़ना बुद्धिमानी नहीं है।

ऐसे शंकाशील व्यक्तियों को गम्भीरतापूर्वक समझना चाहिये कि जब स्थूल शरीर के लिए भोजन, पान, विश्राम, वनिता तथा धनादि की आवश्यकता है तो अन्तरात्मा के लिये क्या कुछ भी नहीं चाहिये? यह तो स्थूल शरीर से कहीं अधिक श्रेष्ठ है और उसका पोषक भी है। यह बात इस प्रकार जानी जा सकती है कि अगर सूक्ष्मदेह—मन अशान्त होता है तो आहार, विश्राम अथवा मनोरंजन आदि सम्पूर्ण लौकिक साधनों के होते हुए भी स्थूल शरीर कुश होता चला जाता है तथा इसके विपरीत अगर सूक्ष्मदेह भक्ति, आराधना एवं उपासना आदि के द्वारा तुष्ट और शांत रहे तो अल्प भोजन अथवा भौतिक सुख-साधनों की अल्पता होने पर भी अन्तर्मानस परम शांत, संतुष्ट और जागरूक रह सकता है।

प्रश्न उठता है कि हमारे मन में अशांति, विकार और दोष कहाँ से आ जाते हैं जिनके निरसन के लिये, शांतिप्राप्ति के लिये तथा अनन्त सुख का अनुभव करने के लिये उपासना की आवश्यकता होती है? गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर समझा जा सकता है कि वस्तुतः जीव का स्वरूप तो सच्चिदानन्द ही है; किन्तु अनादिकालिक रागादि विकारों के कारण इसका स्वरूप दूषित हो रहा है, जिससे आत्मा अनन्त आनन्दरूप होने पर भी स्वयं को दुःख रूप समझने लगता है। अतः विकारों की मलिनता दूर करने के लिये इष्ट की उपासना

करना आवश्यक है। उपासना से मन जितने समय तक इष्टाकार रहेगा उतने ही काल तक वह दोषों से, कषायों से या विकारों से परे रहेगा और धीरे-धीरे अभ्यास के द्वारा जब वह निरन्तर इष्टमय बना रहेगा तो अपने वास्तविक रूप सच्चिदानन्द की प्राप्ति कर लेगा और परमशांति तथा तुष्टता का अनुभव करता हुआ समस्त शंकाओं और संदेहों से रिक्त हो जाएगा। उस समय आध्यात्मिक प्रकाश की अनिर्वचनीय प्राप्ति हो सकेगी तथा हृदय की सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ खुल जाएँगी। कहा भी है:—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

इस स्थिति में पहुँचने पर आत्मा को अनिर्वचनीय प्रकाश का अनुभव होता है, और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

उपासना किसकी ?

साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति समय-समय पर किन्हीं वस्तुओं की अथवा व्यक्तियों की उपासना करता है। यथा—बुभुक्षु और तृषा-पीडित प्रतिपल खाद्यान्त और जल-प्राप्ति के चिन्तन में व्याकुल रहता है, चोर स्वयं को हीन समझता हुआ डाकू की शक्ति और साहस की सराहना करते हुए उसके समान बनने की कामना में डूबा रहता है। किन्तु ऐसे चिन्तन-मनन, उपासना की तुला पर निकृष्ट और सारहीन साबित होते हैं, आध्यात्मिक जगत् में उनसे कोई लाभ नहीं होता और न ही वे आत्मोन्नति में सहायक बनते हैं।

उपासना का अर्थ ही 'उप + आसना'—यानी समीप बैठना है। इसलिये उपासना के इच्छुक को आरम्भ में ही योग्य के समीप बैठकर यानी रहकर उसके गुणों को ग्रहण करना चाहिये। उपासना करने वाला उपास्य के गुण अपने में धारण करता है, अतः वह ज्ञानी गुरु के पास रहकर अथवा जिसके पास विशिष्ट आत्म-शक्ति हो उसके संसर्ग में आकर उसकी उपासना करे। ऐसा करने पर उसे ज्ञान की प्राप्ति होगी तथा उसकी आत्मिक शक्ति बढ़ेगी। उसका अपने उपास्य जैसा बनने का प्रयत्न करना ही उपासना है। स्पष्ट है कि उपासना अयोग्य की नहीं, अपितु योग्य की करनी चाहिये, वही लाभकारी होती है तथा सही अर्थ में उपासना कहलाती है। दूसरे शब्दों में जिस उपासना से ज्ञान की वृद्धि हो तथा आत्म-शक्ति में विशिष्टता आए वही सच्ची उपासना होती है।

उन्नति शनैः—शनै होती है और तभी होती है, जब मानव अपना संबंध अतियोग्य एवं विशेष सिद्धि-प्राप्त व्यक्तियों से रखे। उन्नति का अकाट्य नियम ही यह है कि साधक अपना संबंध अपने से उच्च कोटि के साधक के साथ जोड़े।

अन्ततः परमात्मा से लौ लगाने पर ही मनुष्य अपनी आत्मा को उन्नति के शिखर पर लाता हुआ परमात्मा बन सकता है। सारांश यही है कि लौकिक कल्याणार्थ शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों की उपासना भी लघु पैमाने पर सर्वत्र व्यवहृत है किन्तु वह निम्न कोटि की तथा धर्म-विग्रहित है। वास्तविक उपासना पारलौकिक कल्याण के हेतु संसार-मुक्त, शाश्वत सुख के अधिकारी तथा वीतराग प्रभु की की जाती है और वही श्रेयस्कर है।

धर्मो दीपो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

जैनधर्म की साधना-उपासना

अन्य अनेक धर्मों के अनुसार जैनधर्म में भी आत्मोन्नति अथवा आत्मविकास की पूर्ण अवस्था मोक्ष ही है। मोक्ष जीवमात्र का चरम और परम लक्ष्य है। जो आत्मा अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुणों को विकास की सर्वोच्च सीमा पर ले जाती है वह अपने शुद्ध स्वरूप में शाश्वत काल के लिये स्थिर हो जाती है। इस स्थिरता को ही पुनः-पुनः जन्म-मरण से मुक्ति अथवा मोक्ष कहते हैं। मोक्ष या मुक्ति का कोई विशेष स्थान नहीं है अपितु आत्मा का शुद्ध चिन्मय स्वरूप की प्राप्ति कर लेना ही मुक्ति है। मुक्त होने के पश्चात् न वह कहीं जन्म लेती है और न ही पुनः कर्मों से आवद्ध होती है। जैनधर्म की साधना मुख्य रूप से आत्मा की साधना, दूसरे शब्दों में आत्मा के विकास की साधना है। जैनधर्म में किसी अवतार का प्रावधान नहीं है। इस धर्म के जितने भी अरिहंत अथवा तीर्थंकर होते हैं—सभी आत्मा की साधना अथवा उपासना द्वारा आत्मा का ऊर्ध्वमुखी विकास करके उक्त पद को प्राप्त करते हैं। जैनधर्म में एक मत से यही स्वीकार किया गया है कि जीव अपने राग-द्वेष को नष्ट करके वीतराग बनकर ईश्वरत्व या परमात्म-पद को प्राप्त करता है। जैनधर्म ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है अतः आस्तिक धर्म है, किन्तु यह अवतारी ईश्वर पर विश्वास न करके आत्मा को ही परमात्मा बनाने में विश्वास रखता है।

जैनदर्शन में मोक्ष-प्राप्ति के अनेकों मार्ग बताए हैं, यही कारण है कि इसे सहस्ररूपा साधना भी कहा गया है। कहीं ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप इन चारों को मोक्ष का मार्ग बताया है और कहीं तप का चारित्र्य में समावेश करके ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य को मुक्ति का साधन कहा है। कहीं बताया है—

‘तवसुद्वद्वद्वं चेदा ज्ञाणरहधुरन्धरो हवे ।’

—तप, श्रुत और व्रत का पालन करने वाली आत्मा ही ध्यानरूपी रथ पर आरूढ़ हो सकती है और ध्यान से ही जीव को अन्तिम साध्य मोक्ष की उपलब्धि होती है। इस प्रकार मोक्ष का साधन ध्यान और ध्यान के साधन तप, श्रुत और व्रत हैं।

तपःसाधना

कर्मबद्ध आत्मा को मुक्त करने के लिये तपःसाधना अनिवार्य है। तप ऐसी अग्नि है जो अष्ट कर्म-रूप काष्ठों को भस्म कर देती है और आत्मा अपने अद्वितीय शुद्धस्वरूप को प्राप्त कर लेती है। निशीथचूर्णि में भी बताया गया है—‘तप्यते अणेण पावं कम्ममिति तपः ।’ जिस प्रवृत्ति से पाप-कर्म तप्त होकर जल जाते हैं उसे ही तप कहते हैं।

वैसे तो आत्म-शुद्धि के लिये की जाने वाली प्रत्येक प्रवृत्ति तप कहला सकती है और ये प्रवृत्तियाँ असंख्य हैं, अतः इन्हें सीमा में बाँधना कठिन है फिर भी जैनधर्म में सम्पूर्ण तपोमार्ग को दो भागों में विभक्त किया गया है।

(१) पहले भाग में बाह्य तप आते हैं जिनके नाम हैं—अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रस-परित्याग, कायक्लेश तथा प्रतिसंलीनता।

(२) दूसरे प्रकार के तप आभ्यन्तर तप कहलाते हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

अर्चनाचर्चन

ये छह बाह्य और छह आभ्यन्तर, कुल बारह तप हैं, जिनकी साधना सम्यक् रूप से की जाय तो मन विषय-विकारों से रहित होकर निर्मल बनता है और निर्मल मन के द्वारा ही वीतराग प्रभु व पंच परमेष्ठियों की उपासना सम्यक् रूप से हो सकती है। जगत में मङ्गलरूप, लोकोत्तम एवं शरण्यभूत पंच-परमेष्ठी ही होने से पंच-नमस्कार मंत्र का जप अथवा इसकी उपासना करना आवश्यक है। यद्यपि ध्यान, साधना अथवा उपासना का सच्चा लक्ष्य तो आत्मा को परमात्मा बनाना ही है, किन्तु जब तक आत्म-दर्शन नहीं होता तब तक मन को एकाग्र करने के लिये उसे तप के द्वारा शुद्ध करके पंच-परमेष्ठियों का आदर्श सन्मुख रखकर मंत्र-रूप जप या महामंत्र की उपासना करनी चाहिये।

श्रुत-साधन—

मुमुक्षु के लिये सम्यग्-ज्ञान की प्राप्ति करना अनिवार्य है। सम्यग् ज्ञान के अभाव में अज्ञान रहेगा तथा अज्ञानावस्था में आत्म-विकास या आत्म-शुद्धि के लिये की जाने वाली कोई भी क्रिया लाभप्रद नहीं होगी। सूत्रकृतांग में बताया गया है:—

जहा अस्साविणि णावं, जाइअंधो डुरूहिया ।
इच्छइ पारमागंतुं, अंतरा य विसीयई ॥

—अज्ञानी साधक उस जन्मांध व्यक्ति के सदृश है, जो छिद्रवाली नौका पर चढ़कर नदी के किनारे पहुँचना चाहता है, किन्तु किनारा आने से पहले ही मध्य-प्रवाह में डूब जाता है।

इसीलिये साधना और उपासना करने से पूर्व सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना तथा पुनः पुनः स्वाध्याय करना आवश्यक है। ज्ञान की महिमा अपरम्पार है, अतः ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म-नाश में भी महान् अन्तर है। इस विषय में बताया गया है:—

कोटिजन्म तप तपं, ज्ञान बिन कर्म अरें जे,
ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्ति तें सहज टरें ते ।

मिथ्याज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों तक अज्ञानतापूर्वक तपरूप उद्यम करके जितने कर्मों का नाश कर पाता है, उतने कर्मों का नाश सम्यग्ज्ञानी जीव के त्रिगुप्ति से, अर्थात् मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को रोकने से क्षणमात्र में सहज रूप से नष्ट हो जाते हैं। पर ऐसा तभी हो सकता है, जबकि सिद्ध, अरिहंत अथवा परमात्मा, किसी भी रूप का चिन्तन, जिसे उपासना कहा जा सकता है, उसे एकाग्रतापूर्वक चरम सीमा तक पहुँचा दिया जाय।

व्रत-साधना—

व्रत नाम है संयम का। इन्द्रियों के विषय में यथेच्छ प्रवृत्ति को 'अव्रत' कहते हैं तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना व्रत या संयम कहलाता है। अव्रती अथवा असंयमी साधक या उपासक की मनोवृत्तियाँ संसार के भोगोपभोगों की ओर प्रवृत्त होती रहती हैं। अतः वह उपासना में समीचीन रूप से तन्मय नहीं हो सकता, किन्तु जो व्रती और संयमी होता है वह अनासक्त होने के कारण उपासना-रत रहता हुआ कर्मनाश करता चला जाता है तथा अन्त में स्वयं अपने उपास्यवत् हो जाता है।

वीतरागो विमुच्येत, वीतरागं विचिन्तयन् ।

घमगो दीतो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

—वीतराग का चिन्तन करता हुआ साधक स्वयं वीतराग होकर कर्मों से मुक्त हो जाता है।

संयम अथवा व्रत आत्मिक अनुशासन है। यह बाहर से नहीं आता वरन् अन्दर से ही प्रस्फुटित होता है। व्रत से आत्मशक्ति का संवर्धन होता है और यही शक्ति चिन्तन-मनन, साधना व उपासना को बल प्रदान करती हुई मुक्ति की ओर अग्रसर करती है।

बौद्धधर्म में उपासना—

इस धर्म में उपासना के दो प्रकार माने गए हैं। (१) प्रथम लौकिक उपासना—इसका तात्पर्य है—‘अभ्यास’ या ‘उद्यम’। किसी चरम उद्देश्य की सिद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्न करना (२) द्वितीय है अलौकिक उपासना—अलौकिक उपासना उन आध्यात्मिक या मानसिक साधनाओं को कहते हैं जो योग अथवा तन्त्र की प्रक्रिया से अलौकिक सिद्धियों की या मुक्ति की प्राप्ति के लिये की जाती है।

बौद्धों की तान्त्रिक उपासनाओं के लिये अधिकारी वह होता है जिसे गुरु परीक्षा करके उपासना के योग्य घोषित कर दें।

बौद्ध धर्मावलम्बी तंत्रों की चार श्रेणियाँ मानते हैं। (१) क्रियातन्त्र (२) चर्यातन्त्र (३) योगतन्त्र और (४) अनुत्तर योगतन्त्र। इन चार प्रकार के तंत्रों के उपासकों की भी चार श्रेणियाँ हैं।

वज्रयानीय बौद्धधर्म का मुख्य गढ़ महाचीन (तिब्बत) है। वज्रयानियों का मुख्य उपासना-मंत्र है—‘ओम् मणि पद्मे हुम्’ यह बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का षडक्षरी महामन्त्र है। महात्मा बुद्ध ने यद्यपि कोई ग्रन्थ नहीं लिखा किन्तु उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों को (१) विनयपिटक (२) सुत्तपिटक तथा (३) अभिधम्मपिटक के नाम से संकलित किया है।

जरथुस्त्र धर्म की अग्नि-उपासना—

पारसी जरथुस्त्रियों के ‘आतिश बेहराम’ नामक अग्नि-मंदिर में एक विशेष अग्नि को स्थापित किया जाता है। इस मन्दिर को ‘अगियार’ भी कहते हैं और इसके गर्भ-गृह में वेदी पर एक विशिष्ट चाँदी के पात्र में अग्नि को प्रतिष्ठित किया जाता है। उस अग्नि में दिन-रात चन्दन जलाकर आस्तिक व्यक्ति बोध प्राप्त करते हैं। यथा:—जहाँ ईश्वरीय अग्नि जलती है वहाँ उसका प्रज्वलित रहना सृष्टि के व्यवहार का चालू रहना है। चन्दन का जलकर सुगन्ध फैलाते हुए धूम्र के रूप में ऊँचा उठना स्वर्ग की ओर इंगित करना है। अग्नि का तेज जीवन का प्रकाश है जो उपासक की आत्मशक्ति तीव्र होने का द्योतक है। और जिस खण्ड में अग्नि प्रज्वलित रहती है वह सृष्टिकर्ता का सुन्दर नमूना अशोई की शिखा पर है तथा अन्धकार को दूर करके मानव के आन्तरिक जीवन को उच्चस्थान प्रदान करने वाला है। उस खण्ड के ऊपर की ओर पड़ने वाली ज्योति को ‘आश्रो अहुरमज्द’ की कल्पना करके बन्दगी करने वाले मस्तक समर्पण करते हैं। अग्नि को ईश्वर का पुत्र इस भौतिक जगत् का स्रष्टा और अपने पिता ‘अहुरमज्द’ का प्रतिनिधि तथा अनन्त सुख का स्वामी माना जाता है जो जीवों का कल्याण करता है।

प्रत्येक जरदोशती अग्नि-मंदिर में अग्नि के सन्मुख खड़े रहकर उसमें चन्दन का हवन करते हुए प्रार्थना करता है जो स्तुति अवेस्ता में 'आतिश निआएश' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी स्तुति इस प्रकार की जाती है:—

“हे अहुरमज्द के अग्नि ! तुम सृष्टि के स्वामी हो अतः मुझे पवित्र करो, दुष्कर्मों से दूर रखो, मेरे भोजन-पान में निवास करो, राह-बाट व घर आदि को प्रकाशमान करते रहो तथा दीर्घ-जीवन, अनन्तसुख, प्रखरबुद्धि, बल और पौरुष प्रदान करो।”

इस प्रकार पारसी जरदोशती केवल अग्नि को अपना उपास्य मानकर उसकी उपासना करते हैं तथा जीवन में जो कुछ भी आवश्यक है उसकी माँग अपनी प्रार्थना में करते हैं। इनके धर्मग्रन्थ का नाम 'जन्द अवेस्ता' है।

ईसाईधर्म में प्रार्थना ही उपासना

ईसाईधर्म-ग्रन्थ बाइबिल में 'स्तोत्र-संहिता' नामक पाँच अध्याय तथा १५० वर्ग का एक प्रकरण उपासना के लिए कहा गया है। उसमें 'परमेश्वर का स्तवन करो' यह वाक्य अनेक बार आया है। मूलग्रन्थ में उसे 'हालेलूया' कहा गया है। ईसाई धर्म की मान्यता है कि परमेश्वर स्वयं को तीन रूपों में प्रकट करता है:—(१) परमपिता परमात्मा, (२) प्रभु का पुत्र ईसा तथा (३) पवित्रात्मा के रूप में। इनका पवित्र चिह्न क्रॉस है तथा मानवमात्र से प्रेम करना ही प्रभु की सच्ची उपासना मानी जाती है।

इस्लाम धर्म में उपासना

इस धर्म में बताया गया है कि हज़रत मुहम्मद को उस समय में प्रचलित 'बुतपरस्ती' अच्छी नहीं लगी तो उन्होंने 'खुदापरस्ती' का प्रचार करने का निश्चय किया। उन्होंने काफी समय तक 'मक्का' के समीप हारा पर्वत की एक गुफा में एकान्तवास किया और तत्पश्चात् अपनी वेगम को सूचित किया कि फ़रिश्ता जिबराइल ने उन्हें संदेश दिया है कि खुदा ने मुहम्मद को अपना पैगम्बर नियत किया है। वे पढ़े-लिखे नहीं थे किन्तु जोश व आवेश में कुरान की आयतें उनके मुँह से निकलती रहती थीं। इस्लाम के मुख्य दो स्तंभ हैं—

(१) ईमान:—इसमें खुदा, उनके पैगम्बर, फ़रिश्ते, कुरान, खुदा की सर्वशक्तिमत्ता तथा मृत्यु के पश्चात् न्याय के दिन में विश्वास करना है।

(२) दीन:—दीन के अङ्ग नमाज़, रोजा, जकात (दान देना) और हज़ (पवित्र तीर्थ 'मक्का' जाना) हैं।

हिन्दू प्रायः एकान्त में प्रभु की उपासना करते हैं, ईसाई घुटने टेककर तथा यहूदी (जरदोशती) खड़े होकर प्रार्थना करते हैं; किन्तु मुसलमानों की पाँच वक्त, की नमाज़ या खुदा की उपासना चटाई अथवा दरी पर ही हो सकती है। उस समय उपासक का मुँह मक्का की ओर होना भी आवश्यक है। प्रार्थनाएँ छोटी और अरबी भाषा में होती हैं जिन्हें 'रकोह' कहते हैं। प्रत्येक शुक्रवार को मध्याह्न के उपरान्त की नमाज़ सामूहिक होती है। इनका महामन्त्र 'कलमा' है। कलमे पाँच हैं जिन्हें दिल से मानना तथा जवान से कहना आवश्यक होता है।

**धर्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है**

सिख धर्म में उपासना

सिखों के मन्दिर या गुरुद्वारे में कोई मूर्ति नहीं होती वरन् इनका धर्मग्रन्थ 'गुरुग्रन्थ साहिब' होता है। इसके प्रति सिखों की अपार भक्ति तथा श्रद्धा होती है और वे इसी की पूजा व पाठ करते हैं। जब 'ग्रन्थसाहिब' का पाठ होता है तब कोई भी एक श्रद्धालु पीछे खड़ा रहकर इस पर पंखा झलता है। इसी ग्रन्थ के समक्ष रूपया, पैसा चढ़ाया जाता है तथा प्रतिदिन दोनों वक्त इसका बड़ी भक्ति से पाठ किया जाता है। केश, कंघा, कच्छा, कड़ा और कृपाण इनके अति पवित्र धर्म-चिह्न माने जाते हैं। ये मन की पवित्रता पर जोर देते हैं तथा माला पर 'सतनाम वाह गुरु' का जप करते हैं। यह हिन्दू धर्म का ही एक पंथ है।

वैदिकधर्म की उपासना

वस्तुतः हिन्दूधर्म अनेकरूप धर्म है। वेद, उपनिषद्, महाभारत, भागवत, गीता, रामायण एवं पुराण आदि इसके अनेक धर्मग्रन्थ हैं। हिन्दूधर्म में ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा राम, कृष्ण, हनुमान की ही नहीं वरन् तेतीस करोड़ देवी-देवताओं की उपासना की जाती है। उपासना साकार व निराकार दोनों प्रकार की होती है। पाठ, पूजा, जप, यात्रा, तपस्या तथा ध्यान आदि सभी उपासना के विविध अंग होते हैं।

उपरिर्वाणित कुछ धर्मों के अलावा अन्य अनेक धर्म हैं, जिन की उपासना-पद्धतियाँ विभिन्न प्रकार की हैं। कुछ नाम इस प्रकार हैं:—शैव, सौर, गाणपत्य, श्रीनिम्बार्क, श्रीवल्लभ, श्रीगौड़ीय, श्रीरामानन्द, उदासीन, रामसनेही, दादूपंथ, नाथ आदि २। लेख का कलेवर बढ़ने के कारण इन सभी के विषय में विस्तृत नहीं लिखा जा सकता, आवश्यकता भी नहीं है। यही जानना काफी है कि इन सभी सम्प्रदायों की उपासना-पद्धतियाँ विभिन्न हैं किन्तु अपने इष्ट या उपास्य के प्रति इनकी भक्ति का पार नहीं है। अनेक संत आज भी निर्जन स्थानों पर जाकर अथवा गिरि-कन्दराओं में बैठकर एकाग्र-उपासना-रत पाए जाते हैं। कभी-कभी ये बस्ती में आकर मात्र शरीर को टिकाने जितना खाद्यान्न ग्रहण करते हैं।

प्रस्तुत शास्त्रोक्त उदाहरणों से तथा अनेक भक्तों के अनुभवों से ज्ञात होता है कि साकार एवं निराकार, दोनों ही प्रकार की उपासनाओं के द्वारा उपासक अपने लक्ष्य को प्राप्त करते रहे हैं। फिर भी आज अनेक साधकों की शिकायत रहती है कि प्रयत्न करने पर भी उपासना में मन एकाग्र नहीं हो पाता, अथवा चिरकाल करते चले आने पर भी उन्हें अभी तक सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसे साधना या उपासना के इच्छुकों को उपासना में सहायक तत्त्वों का ज्ञान करके उन्हें अपनाना चाहिये तथा उपासना को सफल बनाने वाले कारणों और साधनों को अपनाकर उपासना को बलवती तथा फलप्रदायिनी बना लेना चाहिये।

उपासना में सहायक तत्त्व

उपासना प्रारम्भ करने से पूर्व जिन सहायक तत्त्वों पर अमल करना आवश्यक है वे कोई नये या अनोखे नहीं हैं। हमारे जीवन-व्यवहार में व्यवहृत होने वाले जाने-पहचाने नियम ही हैं। किन्तु उनका अभ्यास एवं पालन सचाई तथा कड़ाई से होना चाहिये। क्योंकि एक छोटी सी भूल भी बनते हुए कार्य को पल भर में बिगाड़ सकती है। वे सहायक तत्त्व चार हैं जिनका क्रमशः संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है—

(१) सात्त्विक आहार:—गृहस्थ उपासक को न्यायोपाजित धन के द्वारा शुद्धि एवं पवित्रता से बनाया हुआ परिमित भोजन करना चाहिये। मांस आदि अभक्ष्य एवं उत्तेजक, तामसी पदार्थों का भक्षण करना सर्वथा अनुचित और उपासना की दृष्टि से पूर्णतया निष्फल है। 'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।' जिस शरीर में तामसिक पदार्थ पहुँचते हों, उसमें रहने वाला मन कभी निर्मल नहीं बन सकता। वह उपासना के योग्य नहीं रह जाता। एक महत्त्वपूर्ण जानने की बात यह है कि उपासक अगर विरक्त या साधु हो तो उसके लिये भिक्षान्न अमृततुल्य माना गया है।

(२) सत्यभाषण:—प्रत्येक उपासक को हित, मित एवं प्रिय सत्य ही बोलना चाहिये। असत्य भाषण से औरों को जितनी हानि होती है, उसकी अपेक्षा अनेकगुनी अधिक हानि असत्य बोलने वाले को होती है। वह अपने उपास्य ईश्वर से परे हो जाता है। हमारे शास्त्र स्पष्ट कहते हैं:—'तं सच्चं भगवं।' अर्थात्—सत्य ही भगवान् है। इतना ही नहीं, सत्य के लिये यह भी कहा गया है—

'सच्चं सगद्द्वारं, सच्चं सिद्धीइ सोपानं ।'

—सत्य स्वर्ग का द्वार है तथा सिद्धि का सोपान है।

(३) संयम:—प्रत्येक उपासक के लिये उपासना प्रारंभ करने से पूर्व अपने मन एवं इन्द्रियों को नियन्त्रित अथवा संयमित कर लेना चाहिये। अगर ऐसा न किया गया तो मन इन्द्रिय-सुखों की प्राप्ति का इच्छुक बना रहेगा और उपासना में कभी एकाग्र नहीं हो पाएगा। 'सूत्रकृतांग' शास्त्र में बताया है:—

जहा कुम्मे सभंगाई, सए देहे समाहरे ।

एवं पावाइं मेहावी, अज्जप्पेण समाहरे ॥

अर्थात्—कछुआ जिस प्रकार अपने अंगों को अन्दर समेट कर खतरे से बचाव कर लेता है, इसी प्रकार मेधावी साधक भी अध्यात्मयोग के द्वारा अन्तर्मुख होकर पापवृत्तियों से स्वयं को सुरक्षित रखता है।

वस्तुतः वही उपासक उपासना में सफलता प्राप्त कर सकता है, जो मन को बाह्य-वृत्तियों की ओर से मोड़कर अन्तर्मुखी बना ले। सिनेमा-हॉल में हम देखते हैं कि अन्दर के मुख्य पर्दे पर चल-चित्र तभी स्पष्ट दिखाई देता है, जबकि हॉल के सभी द्वार बन्द कर दिये जाते हैं, अन्दर जलनेवाली बत्तियाँ भी बुझा दी जाती हैं और तब एक विशेष स्थान से विशिष्ट प्रकार के प्रकाश के साथ श्वेत-पट पर विभिन्न दृश्य दिखाई देते हैं।

ठीक इसी प्रकार उपासक को भी उपासना करने से पूर्व अपने मन-मंदिर के वे समस्त द्वार जिनसे इन्द्रियाँ बाह्य भोगोपभोगों की ओर भागती हैं, बन्द कर लेना चाहिये। और उसके बाद अन्तर में पुनः पुनः संकल्प-विकल्पों की जो चमक पैदा होती है, उसे भी बुझा लेना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्णतया शांत होकर अपनी विशेष आत्म-शक्ति के प्रकाश से चित्त के निर्मल पट पर आत्मा के विभिन्न दृश्य देखते हुए आत्मदर्शन करना चाहिये तथा आत्मा को अपने उपास्य और आराध्य में आत्मसात् होते हुए देखना चाहिये। ऐसा होने पर ही उपासना सफलीभूत हो सकेगी।

**धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है**

(४) सत्संगः—सत्पुरुषों की संगति को सत्संग कहा जाता है। इसका कितना महत्व है, इसे साधारणतया सभी समझते हैं। फिर भी मानव दुर्जनों के समागम से नाना प्रकार के दोषों और विकारों में लिप्त होकर कर्म-बन्धन करता हुआ संसार में जन्म-मरण करता रहता है। एक पाश्चात्य विचारक ने दुर्जन साथियों की भर्त्सना करते हुए कहा है:—

“Evil companions are devil's agents and by these ambassadors he effects more than he could in his own person.”

—बुरे साथी शैतान के प्रतिनिधि होते हैं। इन दूतों के द्वारा शैतान ऐसा अनिष्ट करता है जो वह स्वयं नहीं कर सकता।

किन्तु इसके विपरीत अगर व्यक्ति सज्जनों की, ज्ञानियों की तथा संत पुरुषों की संगति करे तो उनके समागम से वह मनोविजय की युक्तियाँ समझ सकता है, उपासना में आने वाले विघनों के विषय में जान सकता है तथा मन को निर्मल और सबल बनाने की शक्ति प्राप्त कर सकता है। इतना ही नहीं, अगर किन्हीं कारणों से वह उनका सदुपदेश न सुन सके और ज्ञान प्राप्त न कर पाए, तब भी उनके समीप रहने से उनके निर्दोष आचरण, क्रिया एवं सौम्यता, शांति आदि गुणों का अवलोकन करके अपनी वृत्तियों को पवित्र और सात्त्विक बना सकता है। अदृश्य रूप से वायुमंडल के द्वारा उनके पवित्र तथा कल्याणकारी भावों को आत्मसात् कर सकता है जो हृदय में पहुँचकर शोधन का कार्य करते हुए करुणा और प्रेम का बीज वपन करते हैं। इसीलिये उपासक को संत-समागम अनिवार्य बताया गया है। अन्यथा उसका शरीर, मन या आत्मा, उपासना के योग्य कदापि नहीं बन सकते।

उपासना शीघ्र फल-प्रसविनी कैसे बने ?

अभी हमने उपासना के सहायक तत्त्वों पर विचार किया किन्तु कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिन्हें जीवन में दृढ़तापूर्वक उतार लेने से साधना शीघ्र फलवती हो सकती है। उन बातों या कारणों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

(१) विश्वास—साध्य की सिद्धि में लेशमात्र भी संदेह का न होना विश्वास कहलाता है। विश्वास से चित्त को बहुत बल मिलता है। आत्म-शक्ति अनेक गुनी बढ़ जाती है, तथा उपासक असफलता की चिन्ता से सर्वथा मुक्त होकर उपासना में तन्मय हो जाता है।

पूर्ण आस्था होने पर भक्त कंकर को भी शंकर के रूप में प्रतिष्ठित करके उनसे सिद्धियाँ हासिल कर लेता है और इसके विपरीत अविश्वासी व्यक्ति शंकर को कंकर समझता हुआ अपने साध्य से दूर हो जाता है। कोई भी साधक अथवा उपासक अपने लक्ष्य पर तभी पहुँच सकता है, जबकि उसका विश्वास अपने मार्ग पर सदा एक सा बना रहे। अविश्वास और शंका ने अगर जन्म ले लिया तो उसका आत्मबल क्षीण हो जायेगा और निर्दिष्ट लक्ष्य, तक पहुँचना कदापि संभव नहीं होगा। इसीलिये हमारे शास्त्र आचारांग सूत्र में साधक को चेतावनी देते हुए कहा है:—

“जाए सद्भाए निक्खंते तमेव अणुपालेज्जा,
विजहिता विसोत्तियं।”

यानी—जिस विश्वास के साथ निष्क्रमण किया है, साधनापथ को अपनाया है, उसी श्रद्धा का शंका या कुंठा से रहित होकर अनुपालन करना चाहिये ।

स्पष्ट है कि शंका या अविश्वास मार्ग को अवश्य कर देते हैं और कभी भी लक्ष्य को प्राप्त नहीं होने देते । इसीलिये उपासक को उपासना में अखंड विश्वास रखना अनिवार्य है ।

(२) संकल्प-विकल्पों का त्याग—साधना के मार्ग को अपना लेने वाले साधक के लिये मन में उठने वाले अनुकूल अथवा प्रतिकूल, किसी भी संकल्प या विकल्प को मन में स्थान नहीं देना चाहिये तथा विषधर जन्तु के समान उनके आते ही चित्त के बाहर फेंक देना चाहिये । ऐसा करने पर ही चित्त सभी प्रकार के चिंतन से मुक्त होकर एकाग्रतापूर्वक उपासना में निमग्न रह सकेगा । उपासना में अस्थिरता का आना लक्ष्य-सिद्धि के लिए सबसे बड़ी बाधा है, इसे नष्ट कर सकने वाला साधक ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है । श्री शुभचन्द्राचार्य ने कहा भी है:—

“यस्य चित्तं स्थिरीभूतं स हि ध्याता प्रशस्यते ।”

अर्थात् जिसना चित्त स्थिर तथा अडोल होता है, वही साधक अपनी साधना को फलवती बनाकर सबकी प्रशंसा का पात्र बनता है ।

(३) व्याकुलता—उपासक अपने उपास्य की प्राप्ति के लिये अथवा साधक अपने साध्य की सिद्धि के लिये निरंतर प्रयत्न करता रहे तथा लक्ष्य को पाए बिना पलभर भी चैन से न बैठे, ऐसी अवस्था मन की हो जाए तब उसे व्याकुलता की श्रेणी में रखा जा सकता है । उस स्थिति में प्रत्येक विघ्न तथा प्राणत्याग से भी कठोर दुःख उपासक के लिए सर्वथा तुच्छ हो जाता है । उसके मन की समस्त वृत्तियाँ साध्य की ओर उन्मुख हो जाती हैं तथा अन्य किसी ओर उसका ध्यान क्षणमात्र के लिये भी नहीं जाता । चातक की एकनिष्ठा के समान ही साधक बिना संदेह, अविश्वास और ठहराव के भावविह्वल होकर लक्ष्य-प्राप्ति की ओर ही अपने मन, वचन तथा काया को लगाए रखता है, उस उच्चस्तर पर पहुँचने से ही लक्ष्य की शीघ्र प्राप्ति हो सकती है । ‘श्रीमद्भागवत’ में भगवान् ने कहा है—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं—

रुदत्यभीक्षणं हसति क्वचिच्च ।

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च

मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

—जिस भक्त की वाणी नाम-कीर्तन करते-करते गद्गद हो जाती है, जिसका चित्त नामस्मरणमात्र से द्रवित हो जाता है, जो भावावेश के कारण क्षण में रोता और क्षण में हँसता है, लज्जा का त्याग करके उच्च स्वर से कभी गाता है और कभी नाचता है, ऐसा मेरा भक्त सम्पूर्ण विश्व को पवित्र कर देता है ।

तात्पर्य यही है कि ऐसी तन्मय भक्ति, जिसमें भक्त या साधक शारीरिक सुख, भौतिक संपत्ति तथा पुत्र-पौत्रादि सभी के प्रति भ्रमत्व को छोड़कर अपनी साधना और उपासना में तल्लीन हो जाता है, वही उसे अपने उपास्य या लक्ष्य के समीप लाती है । उपासक के मन की प्यास परमात्मा में लीन होकर ही मिटती है और जबतक नहीं मिटती उसका हृदय व्याकुल बना रहता है । संसार के सम्पूर्ण विषयों से परे होकर ही नहीं, अपनी भी सुध-बुध खोकर जब

धर्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है



साधक व्याकुलता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब उसकी आत्मशक्ति चामत्कारिक प्रभाव दिखाती है। इसके उदाहरण अनेक पाये जाते हैं। यथा—सुदर्शन सेठ के लिए शूली का सिंहासन बनना, सती सुभद्रा की चालनी में पानी का आ जाना तथा चन्दनवाला की व्याकुल भक्ति से हथकड़ियों का टूट जाना आदि-आदि। सारांश यह है कि उपासना अगर यथोक्त विधि से की जाय तो वह निश्चय ही फल-प्रदायिनी बनती है। चिंतन-मनन, स्वाध्याय, तप, मंत्र-जाप, भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ, सामायिक, व्रत एवं ध्यान आदि उपासना के अनेक अंग हैं। उपासक अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार इनमें से जो कुछ कर सके, निस्वार्थ भाव से अन्तरमन को इनमें जोड़ते हुए करे तो वह निश्चय ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता हुआ मानव-जीवन का पूर्ण लाभ उठा सकता है। सम्यक् रूप से की गई उपासना ऐसी अनुपम औषध है जो उपासक को जन्म, जरा और मरण के सम्पूर्ण दुःखों से सदा के लिए छुटकारा दिलाकर शाश्वत सुख की उपलब्धि कराती है।

